गुरु विरजानन्द स्मृति ... पुस्तकालय
परिग्रहण क्रमांक 366
दयानन्द महिला म...
आर्य्य समाज नागौर (मारवाड़)

॥ अनुभ्रमोच्छेदन ॥

राजाशिवप्रसादजी के द्वितीय निवेदन के उत्तर में।

प्रकाशित किया ......
दिनांक ......

यह ग्रन्थ लाला सादीराम के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय में छपा।

संवत् १९३७

बनारस।

भारतीय ...
पुस्तकालय ......

प्रति पुस्तक मूल्य ⌐)

डाक महसूल ।)

ओ३म्

॥ अनुभ्रमोच्छेदन ॥

यस्यानराविभ्यति वेदबाह्यास्तयाहि युक्तं शुभसेनया यत् ।
तन्नाम यस्यास्ति महोत्सवं स त्वनुभ्रमोच्छेदनमातनोति ॥ १ ॥

भूमिका ।

मैं ने विचारा था कि राजा जी और स्वामी जी ने एक २ वार लिखा है आगे इस का प्रपंच न बढ़े गा परन्तु वैसा न हुआ और उन के अनुगामी लोगों ने समाचार पत्रों को भी गर्जाया और बहुत योग्यायोग्य वाच्यावाच्य भी लिखना न छोड़ा और मैं ने यह जान भी लिया कि स्वामी जी अपने नाम से इस पर कुछ भी न लिखें और न छपवावेंगे क्योंकि इस पर श्रीयुत स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती और बालशास्त्री जी की संमति नहीं लिखी तथा अन्य किसी आर्य्य ने भी इस के प्रत्युत्तर में न लिखा यह बात ठीक है कि स्वामी जी को तो इस पर लिखना योग्य ही नहीं क्योंकि वे अपनी पूर्व प्रतिज्ञा से विरुद्ध क्यों करें जब ऐसा हुआ तब मैं यथामति इस पर लिखने में प्रवृत्त हुआ यद्यपि इन महाशयों के सन्मुख मेरा लेख न्यूनास्पद है तथापि अन्तःकरण से पक्षपात छोड़ कर देखने से कुछ इस से भी तत्त्व निकलेगा और जो कुछ इस में भूल चूक रहेगी उस को सज्जन महात्मा लोग सुधार लेंगे अब जो राजा शिवप्रसाद जी की यह प्रतिज्ञा है कि अब आगे इस विषय में कुछ न लिखा जायगा तो मुझ को भी आगे लिखना अवश्य न होगा जो राजा जी ने भ्रमोच्छेदन पर दूसरा भाग छपवाया है उस में स्वामी जी के लेख पर निरर्थक आदि दोष दिये हैं उन और इन दोनों पुस्तकों

के लेख को जब बुद्धिमान् लोग पक्षपात रहित होकर देखेंगे तब अवश्य निश्चय करलेंगे कि कौन सत्य और कौन असत्य है ॥

इति भूमिका ॥

देखिये राजा जी के प्रिय और सुन्दर लेख को निवेदन पहिला पृष्ठ १ पंक्ति ११ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका मंगा के पृष्ठ ६ से ८८ तक देखा विचित्र लीला दिखाई दी आधे आधे वचन जो अपने अनुकूल पाये ग्रहण किये हैं और शेषार्द्ध का जो प्रतिकूल पाये परित्याग उन आधे अनुकूल में भी जो कोई शब्द अपने भाव से विरुद्ध देखे उन के अर्थ पलट दिये। पृष्ठ ४ पङ्क्ति ७ ऐसा न हो कि (अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः) के सदृश केवल दयानन्द जी के भाष्य और भूमिका ही की लाठी थांभे किसी अथाह गढें वा घोर नरक कुण्ड में जागिरें। नि० २ पृष्ठ २ पङ्क्ति २४ खेद की बात है क्यों वृथा इतना कागज बिगाड़ा पृष्ठ ५ पङ्क्ति २५ निदान जब मैं ने गौतम और कणाद के तर्क और न्याय से न अपने प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर पाया और न स्वामीजी महाराज की वाक्य रचना का उस से कुछ सम्बन्ध देखा डरा कि कहीं स्वामी जी महाराज ने किसी मेम अथवा साहब से कोई नया तर्क और न्याय रूस अमरीका अथवा और किसी दूसरी विलायत का न सीख लिया हो इत्यादि वचन जो ये राजा शिवप्रसाद जी ने अपने दोनों निवेदनों में लिखे हैं क्या इन को सुवचन गाली प्रदान कागज़ बिगाड़ना आदि कोई भी मनुष्य न समझे गा मैंने राजा शिवप्रसाद जी के दोनों निवेदनों और स्वामी जी के भ्रमोच्छेदन को भी देखा प्रथम निवेदन में जो २ प्रश्न राजा जी के थे उस २ का उत्तर भ्रमोच्छेदन में यथायोग्य है ऐसा मैं अपनी छोटी विद्या और बुद्धि से निश्चित जानता हूं राजा जी और उन के साथियों की विशाल बुद्धि है इसलिये उन के योग्य ठीक २ उत्तर न

हुए होंगे। इस में क्या अद्भुत है अब मैं अपनी अल्प विद्या और बुद्धि के अनुसार द्वितीय निवेदन के उत्तर में थोड़ासा लिखता हूं। निवेदन दूसरा पृष्ठ ४ पङ्क्ति १६ (भला सूर्य्य और घड़े की उपमा संहिता और ब्राह्मण में क्योंकर घट सकेगी उधर सूर्य्य के सामने कोई आध घंटा भी आंख खोल के देखता रहै अंधा नहीं तो चक्षु रोग से अवश्य पीड़ित होवे) इस दृष्टान्त से राजा जी का यह अभिप्राय झलकता है कि वेद को दिन भर भी आंख खोल के देखा करे तो न अन्धा और न नेत्र रोग से युक्त होता है) यहां उन का ऐसा अभिप्राय विदित होता है कि यह दृष्टान्त स्वामी जी का यहां घट नहीं सकता। जहांतक विचार के देखते हैं तो यही निश्चय होता है कि दृष्टान्त का साधर्म्य वा वैधर्म्य गुणही दार्ष्टान्ति में घटता है सब गुण कर्म स्वभाव कभी नहीं (जैसे साध्य साधर्म्यात्तद्धर्मभावी दृष्टान्त उदाहरणम्) न्या० अ० १ अ० १ सू० ३६। (तद्विपर्य्ययाद्वाविपरीतम्) न्या० अ० १ सू० ३७ शब्दोऽनित्य इति प्रतिज्ञा उत्पत्ति धर्मकत्वादिति हेतुः। उत्पत्ति धर्मकं स्थाल्यादि द्रव्यमनित्यमिति दृष्टान्त उदाहरणम् यह शान्त दृष्टि से देखने की बात है कि शब्द में अनित्यत्व धर्म साध्य है क्योंकि उत्पत्ति धर्म वाला होने से जो २ पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे २ सब अनित्य हैं। जैसे स्थाल्यादि द्रव्य उत्पत्तिधर्म वाले होने से अनित्य हैं वैसे कार्य्य शब्द भी अनित्य हैं यहां केवल स्थाल्यादि पदार्थों का उत्पत्ति धर्म हो कार्य्य शब्द में दृष्टान्त के लिये घटा के कार्य शब्दों को अनित्य ठहराया है यह तो कोई भी नहीं कह सकता कि घट पटादि पदार्थों में चक्षु से दीखना स्थूल कठोर और अंधेर में दीपक की अपेक्षा रहना आदि विरुद्ध धर्म हैं इस लिये उन का दृष्टान्त शब्द में नहीं घटेगा वा शब्द में भी वे धर्म हों कि दीपक जला के शब्द देखा जावे राजा जी को अंधेर में दीपक से शब्द देखना उस से पानी आदि लाना चाहिये

वा इस दृष्टान्त ही को न माने तो ऐसा दृष्टान्त कोई न मिले गा कि जिस में दार्ष्टान्त के सब धर्म बराबर मिल जावें। और जो कोई पदार्थ ऐसे भी हों कि जिन के सब धर्म बराबर मिलें तो उन का परस्पर अभेदान्वय होने से उन में दृष्टान्त दार्ष्टान्त तथा उपमान उपमेय भाव कुछ भी न बनसके गा। अब यहां प्रकृत में यह आया कि वेद को सूर्य का दृष्टान्त दिया है तो सूर्य अपने प्रकाश में किसी की अपेक्षा नहीं रखता वैसे वेदों से भी जो अर्थ प्रकाशित होते हैं उनमें ग्रन्थांतर की अपेक्षा नहीं है स्वयं प्रकाशत्व धर्म दोनों का समान है। और जैसे उत्पत्ति धर्म वाले न होने से आत्मादि द्रव्य नित्य हैं वैसा शब्द नहीं क्योंकि उत्पत्ति धर्मवाला है यहां केवल वैधर्म्य अर्थात् कार्य्य शब्द के अनित्यत्व धर्म से विरुद्ध आत्मा का नित्यत्व धर्म ही दृष्टान्त के लिये घटाया है किन्तु जो आत्मा और शब्द के प्रमेयत्व आदि साधर्म्य हैं वे विवक्षित नहीं। जैसा राजा जी का दृष्टान्त विषयक मत है वैसा किसी विद्वान् का नहीं कि दृष्टान्त के सब धर्म दार्ष्टान्त में घट सकते हों। निवे० २ पृष्ट ५ पं० १६ राजा जी स्वामीजी से पूंछते हैं कि (स्वामीजी महाराज यह बतलावें कि पाणिनि आदि ऋषियों ने कहां ऐसा लिखा है कि मंत्र संहिताही वेद हैं ब्राह्मण वेद नहीं हैं) इस का उत्तर अब यह ब्राह्मण शब्द लौकिक है वा वैदिक इस के वैदिक होने में तो कोई प्रमाण नहीं मिलता। लौकिक होने में प्रमाण देखो तत्र लौकिका स्तावत्। गौरश्वः पुरुषो हस्ती शकुनिर्मृगो ब्राह्मण इति। वैदिकाः खल्वपि। शन्नो देवीरभिष्टये। इषेत्वोर्जत्वा। अग्निमीळेपुरोहितम्। अग्न आयाहि वीतय इति। अब यहां अन्तःस्थनेत्रों से देखना चाहिये कि वैदिक शब्द में केवल ४ मंत्र संहिताओं के उदाहरण दिये हैं जो ब्राह्मण भी वेद होते तो वैदिक शब्दों में उनका उदाहरण क्योंन देते

अब कोई यह कहे कि लौकिक शब्दों में जिस ब्राह्मण शब्द का उदाहरण दिया है वह ग्रन्थवाची शब्द नहीं है किन्तु मनुष्यों में जाति विशेष का नाम है तो उससे पूंछना चाहिये कि जाति वाची और ग्रन्थवाची शब्दों में कौन ऐसा चिन्ह है कि जिस से पृथक् २ जाना जावे। हां प्रकरण से अर्थ की संगति होती है सो यहां किसी का प्रकरण नहीं है। यहां पतंजलिजी महाराज के प्रमाण से यह सिद्ध हो गया कि मंत्र संहिताही वेद हैं ब्राह्मण नहीं। अब स्वामीजी पर जो प्रश्न था उस का तो यह उत्तर पतंजलि ऋषि के प्रमाण से हुआ परन्तु वही प्रश्न राजाजी के ऊपर गिरता है कि राजाजी यह बतलावें कि पाणिनि आदि महर्षियों ने ऐसा कहां लिखा है कि मंत्र और ब्राह्मण भाग दोनों वेद हैं अस्तु तावत्। निवे० २ पृष्ठ ५ पं० १८ पाणिनि ने तो जहां मंत्र और ब्राह्मण दोनों के लेने का प्रयोजन देखा स्पष्ट 'छन्दसि, कहा अर्थात् वेद में अर्थात् मंत्र और ब्राह्मण दोनों में और जहां केवल मंत्र वा ब्राह्मण का प्रयोजन देखा (मंत्रे) वा (ब्राह्मणे) कहा और जहां मंत्र और ब्राह्मण अर्थात् वेद के सिवाय देखा वहां 'भाषायाम्' कहा, राजा जी को यह लिखना तो सुगम हुआ परन्तु निम्न लिखित प्रमाण पाणिनि सूत्र और वेदमंत्र आदि का अर्थ कर के अपने पक्ष में घटाना सुगम क्यों कर हो सके गा अब देखिये। छन्दो ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि। अ० ४ पा० २ सू० ६६ इस सूत्र में प्रोक्त प्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मण को अध्येष्ट वेदिष्ट विषयता विधान की है अर्थात् प्रोक्त प्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मण का अध्येष्ट वेदिष्ट अभिधेय में ही प्रयोग हो स्वतन्त्र न हो। अब राजा जी के इस लेखानुसार कि (जहां मंत्र और ब्राह्मण दोनों के लेने का प्रयोजन देखा स्पष्ट 'छन्दसि' कहा) इस से पाणिनि के इस सूत्र में ब्राह्मण ग्रहण व्यर्थ होता है। क्योंकि जो छन्द के कहने से मंत्र और ब्राह्मण दोनों

का ही ग्रहण हो जाता तो फिर यहां ब्राह्मण का पृथक् ग्रहण क्यों किया इस से स्पष्ट ज्ञापक होता है कि छंद से ब्राह्मण पृथक् है। निवे० २ पृष्ठ ५ पं० २२ से (भला जैमिनि महर्षि के पूर्व मी मांसा को तो स्वामी जी महाराज मानते हैं उस में इन सूत्रों का अर्थ क्यों कर लगावें गे) तच्चोदकेषु मंत्राख्या। अ० १ पा० २ सू० ३२। शेषे ब्राह्मण शब्दः। अ० २ पाद १ सू० ३३ इस का अर्थ बहुत स्पष्ट है वेद का मंत्रों से अवशिष्ट जो भाग सो ब्राह्मण) यह अनुभवार्थ राजा जी ने शवर स्वामी की टीका में से सुना हो गा परन्तु यहां यह भी विचार करना उन को योग्य था कि इन सूत्रों के संबध में कहीं वेद संज्ञा निर्वचनाधि करण है वा नहीं किन्तु यहां तो केवल मंत्र निर्वचनाधिकरण और ब्राह्मण निर्वचनाधिकरण है इस से फिर मंत्र और ब्राह्मण दोनों की वेद संज्ञा है यह अभिप्राय कहां से सिद्ध हो सकता है जो इस प्रकरण में ऐसा होता कि (अथ वेदनिर्वचनाधिकरणम्) तो राजा जी का अभिप्राय अवश्य सिद्ध हो जाता। परमात्मा ने वेदस्थ वाक्यों से सर्व विद्या भिधान कर दिया है अब इन में शेष अर्थात् बाकी पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना व्याख्या करनी करानी आदि है और थी भी जो थी सो ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त महर्षि महाशय लोगों ने कर दी है जिस से ये ऐतरेय आदि ग्रन्थ ब्रह्म अर्थात् वेदों का व्याख्यान हैं इसी से इन का नाम ब्राह्मण रक्खा है अर्थात् ब्रह्मणां वेदानामिमानि व्याख्यानानि ब्राह्मणानि अर्थात् शेषभूतानि सन्तीति। परन्तु जहां से इन सूत्रों के अर्थ में राजा जी आदि को भ्रम हुआ है सो शवर स्वामीजी कीइसी सूत्र पर यह व्याख्या है (अथ किं लक्षणं ब्राह्मणम्) (मंत्राश्च ब्राह्मणं च वेदः) विचार योग्य बात है कि न जाने शवर स्वामी ने इन दो सूत्रों में वेद शब्द कहां से लिया और इन की अद्भुत कथा को देखिये कि (प्रश्न) ब्राह्मण का क्या लक्षण है (उत्तर) मंत्र और ब्राह्मण वेद

है विद्वान् लोग विचार लेगें कि जैसा प्रश्न किया था वैसा ही उत्तर श-वर स्वामी ने दिया है वा नहीं यहां विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं किन्तु। आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे। इस न्याय के तुल्य यह व्याख्या है ऐसा ही निवे० टू० २ पृष्ठ ५ पं० २५ निदान जब मैं ने गौतम और कणाद के तर्क और न्याय से न अपने प्रश्न का प्रामाणिक उत्तर पाया और न स्वामी जी महाराज की वाक्य रचना का उस से कुछ संबध देखा डरा कि कहीं स्वामी जी महाराज ने किसी मेम वा साहब से कोई नया तर्क और न्याय रूस अमरिका अथवा और किसी दूसरी वि-लायत का न सीख लिया हो, स्वामी जी ने जो भूमिका में गौतम न्याय का प्रमाण वेद ब्राह्मण विषय में लिखा है उस को वही पुरुष समझ सकता है कि जिस ने उन ग्रंथों की शैली देखी हो। विना पढ़े सब विद्या किसी को नहीं आ जाती। और जिन्हों ने उन शास्त्रों में अभ्या-स ही नहीं किया वे ही ऐसा अनर्गल लिख सकते हैं कि गोतम और कणाद के तर्क न्याय से अपने प्रश्नों का प्रमाणिक उत्तर न पाया इ-त्यादि। अब राजा जी को शास्त्रों में अभ्यास करना अवश्य हुआ क्यों-कि उन के प्रश्नों का उत्तर कोई नहीं दे सकता। और स्वामी जी महाराज जो किसी दूसरी विलायत का तर्कन्याय सीख भी लेते तो क्या आश्चर्य और कौनसा यह बुरा काम था और जो सीख लेते तो अपने ग्रन्थों में भी प्रमाण के लिये अवश्य लिखते वा लिखवालेते। इस से स्पष्ट विदित होता है कि राजा जी ने ही उन विलायतीयों से तर्क न्याय कुछ पढ़ा नहीं तो इस का प्रसङ्ग ही क्या था। ठीक है—यादृशी भा-वना यस्य बुद्धिर्भवति तादृशी। इन के प्रश्नों का उत्तर जब ऋषि मु-नियों के ग्रन्थों से भी न हुआ तो सब ऋषियों से बढ़ के राजा जी हो गये इस से स्पष्ट सब महात्मा ऋषि लोगों की निन्दा आ जाती है। नि-

वे० २ पृष्ठ ६ पं० ४ (फ़रङ्गिस्तान के विद्वज्जन मण्डली भूषण काशीराज स्थापित पाठशालाध्यक्ष डाक्टर टीबो साहब बहादुर को दिख लाया बहुत अचरज में आये और कहने लगे हमतो स्वामीजी महाराज को बड़ा पंडित जानते थे पर अब उनके मनुष्य होने में भी संदेह होता है तब तो भ्रमोच्छेदन को भ्रमोत्पादन कहना चाहिये) बस अब तो राजाजी का पक्ष दृढ़तर सिद्ध हो गया होगा क्योंकि जब उक्त महाशय साहब ने स्वामीजी के मनुष्य होने में भी संदेह और भ्रमोच्छेदन का भ्रमोत्पादन नाम होने की साक्षी दी है फिर क्या चाहिये क्योंकि महाशयों की साक्षी भी गंभीर आशय युक्त होती है क्या ऐसी साक्षी को कोई भी मनुष्य मानेगा कि स्वामीजी के मनुष्य होने में भी संदेह है । निवे० २ पृष्ठ ७ पं० २० डाक्टर टीबो साहब की साक्षी का परामर्श यह है देखिये चित्त धर के (दयानन्दसरस्वती सिवाय एक उपनिषद् के ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रंथों को छोड़ देते हैं और केवल संहिताओं को प्रमाण मानते हैं) इस का उत्तर तो भ्रमोच्छेदन के पृष्ठ ११ पं० २० में यह स्पष्ट लिखा है (परंतु जो २ वेदाऽनुकूल ब्राह्मण ग्रन्थ हैं उनको मैं मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता हूं) जो उक्त साहब ध्यान देकर देखते तो सिवाय एक उपनिषद् के इत्यादि विरुद्ध साक्षी क्यों देते । निवे० २ पृष्ठ ७ और इस विषय से आगे जो २ उक्त साहब ने लिखा है उस २ का उत्तर इसी उत्तर के आगे भ्रमोच्छेदन में लिखा है । निवे० २ पृष्ठ ८ पं० १८ (निःसन्देह दयानन्दसरस्वती जी को अधिकार नहीं कि कात्यायन के उस वचन को प्रक्षिप्त बतावें जिस के अनुसार मंत्र और ब्राह्मण का नाम वेद सिद्ध होता है ऐसे तो जो जिस किसी वचन को चाहे अपने अविवेक कल्पित मत से विरुद्ध पाकर प्रक्षिप्त कह दे) मुझ को अपनी अल्प बुद्धि से आज तक यह निश्चय था कि सत्याऽसत्य

विचार करने का अधिकार सब विद्वानों को है जो यह राजाज्ञावत् डाक्टर टीवो साहब की संमति सत्य हो तो ऐसा होजाय किंतु जो केवल एक डाक्टर टीवो साहब नेही ठेका लिया हो कि अन्य सब को अधिकार है केवल स्वामी जो को नहीं कि कौन प्रक्षिप्त और कौन नहीं ऐसा विचार करें जो ऐसा तो डाक्टर टीवो साहब को सम्मति देने और खंडन मंडन का अधिकार किसने दिया है हम भी पूछ सकते हैं अहो आश्चर्य्य इस सृष्टि में कैसी २ अद्भुत लीला देखने में आती है। निवे० २ पृ० ९ पं० ५ (सो मेरा तो अभिप्राय इतना ही है कि यदि ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार जमदग्नि आदि का अर्थ योही माना जावे तो संहिता के समान ब्राह्मणों को भी वेद भाग अथवा मानोय मानने में उन्ही ब्राह्मण ग्रंथों की युक्तियां क्यों न मानी जावें) जो इस बात का प्रमाण किया जावे तो यास्क मुनि कृत निघंटु निरुक्त पाणिनि मुनि कृत अष्टाध्यायी पतंजलि महामुनि कृत महाभाष्य और पिंगला चार्य्य कृत पिङ्गल सूत्र वेदों के भाष्य वा टीका आदि को भी वेद क्यों न माना जावे क्योंकि जैसे शतपथादि ग्रंथों से वेदस्थ जमदग्नि आदि शब्दों के अर्थ चक्षु आदि माने जाते हैं वैसे ही निघंटु और निरुक्त आदि से भी वैदिक शब्दों के संज्ञा और निर्वचन व्याकरण से शब्द अर्थ और सम्बन्ध और पिङ्गल सूत्रों से गायत्र्यादि छन्द षड्जादि स्वर आदि की व्याख्या वेदों से अविरुद्ध मानी जाती है तो इन की वेदसंज्ञा कौन कर सकेगा। निवे० २ पृष्ठ ९ पं० १० सो यहां भी मेरा तो अभिप्राय इतनाही है कि वेद के नाम से मंत्र भाग अर्थात् संहिता और ब्राह्मणों को मान कर जहां वेदों को अपरा कहा जाय वहां मंत्र और ब्राह्मणों का कर्म काण्ड और जहां वेदों को परा कहा जाय वहां मंत्र और ब्राह्मणों का ज्ञान काण्ड मानना चाहिये) निवे० १ पृष्ठ ११ पं० १०

(इस का अर्थ सीधा २ यह मान लेवें कि आप के चारों वेद और उन के छओं अङ्ग "अपरा" हैं जो "परा" उस से अक्षर में अधिगमन होता है अपना फिराबट का अर्थ वा अर्थाभास छोड़ें) निवे० १ पृष्ठ १२ पं० २० (नोट) कि चारों वेद संहिता और उन के छओं अङ्ग अपरा हैं परा उन के सिवाय अर्थात् उपनिषद् हैं) मुझ को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यहां क्यों राजाजी ने अपने पूर्व लेख से अपर लेख को विरुद्ध लिखा देखो पहिले निवेदन में चारों वेद और छओं अङ्गों को अपरा और उपनिषदों को परा विद्या मानी थी औ दूसरे निवेदन में चारों वेदों के कर्मकाण्ड को अपरा और उन के ज्ञानकाण्ड को परा विद्या मानी और दोनों निवेदनों का अभिप्राय यही है कि मंत्र भाग संहिता और ब्राह्मणभाग की वेदसंज्ञा मानें इसी लिये इतना परिश्रम उठाया और नोट में चारों वेद संहिता अर्थात् मंत्र संहिता ओंही को वेद मान कर ब्राह्मणों की वेद संज्ञा में लिखना भूल गये दृष्टि कीजिये (तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो अथर्ववेदः) राजाजी के इस लेखने उन्हीं के अभिप्राय का निराकरण कर दिया इस को न लिखते तो अच्छा था क्योंकि इस लेख में ऋग्यजुः साम और अथर्व चार शब्द वाच्य मंत्र भाग संहिताओं ही के साथ चार वार वेद शब्द का पाठ है ऐतरेय शतपथ छांदोग्य तारांड्य आदि और गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थों को उस वचन में न परा न अपरा में गणना और न ऐतरेय आदि शब्दों के साथ वेद नाम का पाठ है इस लिये यह पूर्वा पर विरुद्ध लेख है। निवे० २ पृष्ठ ९ पं० १४ (ऐसा ही आजतक वैदिक हिंदू परम्परा से मानते चले आये हैं) यहां भी मैं राजाजी से यह पूंछता हूं कि परंपरा और आजतक इस वाक्यावली का अभिप्राय सृष्ट्युत्पत्ति से लेकर आजतक का समय लिया जाय वा जैसा कि चार पां-

च पीढ़ियों में परंपरा हो जाती है वैसी ग्रहण की जाय जो प्रथम पक्ष है तो वैदिक के साथ आर्य्य शब्द लिखना उचित था अर्थात् वैदिक आर्य्य और जो चार पांच पीढ़ी की परम्परा अभिप्रेत है तो लोकाचारसे भी वैदिक हिन्दू लिखना ठीक नहीं क्योंकि भारतवर्ष वासी मनुष्यों की हिन्दू संज्ञा सिवाय यवन ग्रन्थ और यवनाचार्य्यों की पाठशाला में पठन पाठन संसर्ग के विना राजा जी को कहीं न मिलेगी और ऋग्वेद से लेकर पूर्व मीमांसा पर्य्यन्त संस्कृत ग्रन्थों में तो एतद्देश का नाम आर्य्यावर्त्त और इस में रहने वाले मनुष्यों का नाम आर्य्य वा ब्राह्मण आदि संज्ञा ही मिलेंगी परन्तु यह राजा जी की स्वात्मानुभव वा इस देशियों पर द्वेष अथवा आर्य्यावर्त्त देश से भिन्न देशस्थ विलायतियों से शिक्षा पाकर बोध हुआ होगा। यह साधारण बात नहीं किन्तु जो यह वैदिक शब्दों के साथ हिन्दू शब्द का परंपरा में आजतक पढ़ देना। सो राजा जी की विदेशियों की विद्या और शिक्षा का अनुपम फल है। निवे० २ पृष्ट० १० पं० ६ (भला आप के) (शिव प्रसाद के) एक सहज से प्रश्न का तो उत्तर श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी से बना ही नहीं उत्तर के बदले दुर्वचनों की वृष्टि की यदि काशी जी के पण्डित उन से शास्त्रार्थ करने को उद्यत भी हों तो उत्तर के स्थान में उन्हें वैसे ही दुर्वचन पुष्पांजलिका लाभ होगा इस से अतिरिक्त उसमें से कुछ भी सार नहीं निकले गा) इस पर मैं अपनी बुद्धि के अनुसार इतना ही लिखता हूं कि जो श्री युत बाल शास्त्री जी श्रीमत्पंडितवरधुरंधरअज्ञानतिमिरनाशनैकभास्कर विशेषण यक्त ऐसा कहते हैं और ऐसा निश्चय हो तो स्वामीजी से उनके बड़े २ गंभीराशय प्रश्नों के उत्तर कभी न बन सकें गे फिर इस से मेरी और अन्य लाखह किं वा करोड़ह मनुष्यों की यह

इच्छा है कि जो कोई विद्वान् स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पक्ष को वेदादि शास्त्र द्वारा निरस्त कर देतो उन को क्या ही लाभ नहो पुनः उक्त महाशय इस में क्यों विलम्ब कर रहे हैं और दुर्वचन पुष्पांजलि विषय में इतना ही मैं लिखता हूं कि काशीस्थ लोगों ने दूषणमालिका, दयानन्दपराभूति, चर्मकार भी स्वामी जी से उत्तम गाली सहस्रनामआदि पुस्तक और दण्डनीय, आदि विज्ञापन समाचारों में छपवाया तथा ताली शब्द आदि और जैसा असभ्य अनर्थ लेख स्वामी जी पर किया है और स्वामीजी ने सम्वत् १९२६ के शास्त्रार्थ में किस को गाली प्रदान वा दुर्वचन पुष्पांजलि की थी और जैसे पक्षपात क्रोधरहित होने के लिये स्वामी जी को लिखते हैं तो राजा जी ने पक्षपात और क्रोधयुक्त स्वामी जी को कब देखा था भला क्या पूर्वोक्त तो सुवचन पुष्पांजलि है और स्वामी का लेख दुर्वचन पुष्पांजलि कहा जा सकता है डाक्टर टीवो साहब बहादुर स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के मनुष्य होने में भी संदेह लिखते हैं क्या डाक्टर टीवो साहब को अपने सहोस आदि नौकरों के तो मनुष्य होने में कुछ भी संदेह नहीं किन्तु केवल स्वामी जी के मनुष्य होने में सन्देह करते हैं क्या यह बात अद्भुत गंभीराशय और असंगत नहीं है अहो क्या ऐसे २ लेख को भी बुद्धिमान् लोग अच्छा समझेंगे धन्य हैं! श्रीयुत शिव प्रसाद जी वादी और धन्य हैं! उन के साक्षी अर्थात् श्रीमज्जगत् पूज्य स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी श्रीमत् पण्डित वर धुरंधर अज्ञानतिमिरनाशनैकभास्करबालशास्त्रीजीमहाराज आर्यजन और विद्वज्जन मण्डलीभूषण काशीराजस्थापित पाठशालाध्यक्ष डाक्टर टीवो साहब बहादुर योरूपियन् कि जिन्हों ने परस्पर मिल कर अपना अभीष्टमत प्रकाशित किया

है क्या भला ऐसे २ महाशयों के सामने मेरा लेख हास्यास्पद न होगा और क्या ऐसे २ महात्माओं की साक्षी होने पर राजा जी के विजय होने में किसी को संदेह भी रहा होगा वाह वाह वा !!! जो कोई पर पक्ष निषेध और स्वपक्ष सिद्ध करे तो ऐसी ही बुद्धिमत्ता से करे क्या सहायक अनुमति दायक भी ऐसे ही होने योग्य हैं जहां अर्थी ही साक्षी और न्यायाधीश हों वहां जीत क्यों न होवे क्यों न हो क्या यही सत्पुरुषों का काम है कि जहां तक बने दूसरे की निन्दा अपनी स्तुति करनी अपना सुकर्म समझना हां मैं भी तो राजा शिवप्रसाद जी और स्वामी विशुद्धानन्दसरस्वती जी वा बाल शास्त्रीजी और डाक्टर टीबो साहब बहादुर साक्षी आदि महाशयों के समान स्वामीजी की मनमानी निन्दा और अप्रतिष्ठा करने में तत्पर होता जो उनके प्रशंसनीय गुण कर्म स्वभाव न जानता होता उनकी निन्दा और अपमान करने में कभी करता परन्तु वाल्मीकि मुनि ने कहा है कि (सहवासी विजानीयाच्चरितं सहवासिनाम्) विना किसी के संग किये उसके गुण दोष विदित नहीं हो सकते संवत् १९२८ से १९३७ के वर्ष पर्यन्त मेरा और स्वामीजी का समागम हुआ है जितने वर्ष वा महीने स्वामीजी का सत्संग मैंने किया है और यथा बुद्धि थोड़े से वेद भी देखे हैं उतने दिन और उतने मुहूर्त भी उनका समागम राजाजी आदिने न किया होगा नहीं तो इतना अटाटूट विरोध कभी न करते। देखिये कै एक बड़े २ सेठ साहूकार रईस बुद्धिमान् पण्डित सज्जन लोग राजे महाराजे स्वामीजी को अत्यन्त मानते श्रद्धा करते और उपदेश का भी स्वीकार करते हैं और बहुतेरे विरुद्ध भी हैं तथापि कभी किसी का पक्षपात किसी से लोभ किसी का भय किसी की खुशामद किसी से छल वा किसी से धन हरने का उपाय

वा किसी से स्वप्रतिष्ठा की चेष्टा आदि अशिष्ट पुरुषों के कर्म करते इन को मैंने कभी नहीं देखा और क्या जैसी सब की सत्य बातें माननी और असत्य न माननी स्वामी जी की रीति है वैसी ही राजा जी आदि की मानने योग्य नहीं है परंतु इतने पर भी मैं बड़े आश्चर्य्य में हूं कि राजा जी आदि महाशय निष्कारण ईर्षा और परोत्कर्ष सहन रूप यानारूढ़ हो कर स्वामी जी की बुराई करने में बढ़ते ही चले जाते हैं न जाने कब और कहां तक बढ़ेंगे क्या इसका फल आर्य्यावर्तादि देशों की अनुन्नति का कारण न होगा क्यों न यह घर की फूट रूपी रसास्वादन का प्रवाह दुर्योधन रूप हलाहल सागर से बहता चला आता हुआ आर्य्यावर्त्तस्थ मनुष्यों के अभाग्योदयकारक प्रलय को प्राप्त अबतक न हुआ क्यों इस को परमेश्वर अपने कृपाकटाक्ष से अब भी नहीं रोक देता कि जिस से हम सब सर्वतन्त्र सिद्धान्त रूप प्रेमसागरामृतोदधि में स्नानकर त्रिविध ताप से छूटकर परमानन्द को प्राप्त हों जैसे द्वीप द्वीपान्तर के वासी मुशलमान जैन ईसाई आदि मनुष्य अपने स्वदेशी और स्वमतस्थों को आनन्दित कर रहे हैं क्या ऐसे हम लोगों को न होना चाहिये प्रत्युत सब देशस्थ समग्र मनुष्यादि प्राणिमात्र के लिये परस्पर उपकार विद्या शुभाचरण और पुरुषार्थ कर अपने पूर्वज कि जिन महाशय आर्यों के हम सन्तान हैं उनका दृष्टान्त अर्थात् उपमेय न हों और हों जैसी उन की कीर्त्ति और प्रतापरूप मार्त्तण्ड भूगोल में प्रकाशित होरहा था उन का अनुकरण क्यों न करें और इस में आश्चर्य्य कोई क्यों मानें कि राजाजी और उन के अनुयायी साक्षी स्वामीजी को अविद्वान् पशु अंधे आदि यथेष्ट शब्दों से निन्दा करते हैं मैं निश्चित कहता हूं कि स्वामी जी की निन्दा अप्रतिष्ठा और विरोधता किस ने नहीं की काशी में संवत् १९२६ वें वर्ष में उनपर हल्ला किया संख्या मिलाकर पान

बीड़ा दिया बुरी बुरी निन्दा के पुस्तक और विज्ञापन दिये कई ठिकाने मारने को आये ऊपर पत्थर और धूल फेंकी जिले बुलंद शहर करण वास के समीप जहां स्वामीजी रहते थे वहां किसी ने रात के १ बजे के समय १० आदमी तलवार और लट्ठ लेकर मारने को भेजे कई नास्तिक कहते कई क्रश्चीन बतलाते कई क्रोधी और कई पशुवत् नीच विशेषण देते कई उनका मुख देखने में पाप बतलाते और पास जाने को अच्छा नहीं कहते कोई कलिका अवतार कोई कल मरते आजही मरजाय तो अच्छा कई मजिष्ट्रेटों के कान भर व्याख्यान बंद करादेने में प्रयत्न कर चुके और कोई इन के बनाये पुस्तक भी हाथ में न लेना न देखना कई अपने बाग बगीचों में उन का रहना भी स्वीकार नहीं करते कई वेश्या का मुख देखने सङ्ग करने और पुंसि मैथुनाचरण में भी अपना धन्य जन्म मानते और औरों को उत्साहित करते हैं और स्वामीजी का दर्शन और सङ्ग उस से भी बुरा बतलाते हैं कई स्वामीजी और स्वामीजी के उपदेश मानने वालों को महानरक में गिरना चितलाते हैं। आप गौतम और कणादादि महाशयों से अपने को बुद्धि सागर ठहराते और स्वामीजी को निर्बुद्धि सहज प्रश्नों के उत्तर के अदाता कहते और कई चमार चांडाल आदि में विद्वता और मनुष्य होने की शंका नहीं करते और स्वामीजी में विद्वता के होने और मनुष्य पन में भी शंका बतलाते हैं कोई रेल का भाड़ा भी नहीं लगता ऐसा कहते हैं अब कहां तक इस लंबी गाथा को कहूं मैं ऐसी बातें सुनता और लिखता हुआ थकित होगया क्या ये पूर्वोक्त बातें आर्य्यावर्त के दौर्भाग्य के कारण नहीं हो रही हैं तथापि धन्य है स्वामीजी को इतने हुए पर भी सनातन वेदोक्त आर्य्योन्नति के यत्नों से विरक्त न होकर परोपकार से अपना जन्म सुफल कर रहे हैं भला जो धर्म्म और परमात्मा की कृपा न होती और पर मत द्वेषी स्वमतानुरागा क्षुद्राशय लोगों का राज्य होतातो स्वामीजी

का आज तक शरीर बचना भी दुस्तर न होजाता क्या जो आर्य्य लोग भी मुशलमान आदि के तुल्य होते तो अब तक स्वामीजी का मुख और हस्त वेदभाष्यादि पुस्तक लिखने के लिये आजतक कुशल रह सकते ? और जो स्वामीजी में पक्षपात राहित्य सत्यता विदुषता शान्ति निन्दा स्तुति में हर्ष शोक रहितता न होती और विमल विद्या प्रगल्भता धार्मिकता आप्तत्वादि शुभ गुण न होते तो ऐसे २ सनातन वेदोक्त सत्य धर्मोपदेशादि प्रशंसनीय आर्य्योन्नति के दृढ़ कारण प्रकाशित और सुस्थिर कभी न कर सकते क्योंकि देखो आर्य्यावर्त्त में प्रशंसनीय महाशय विद्वानों के विद्यमान रहते भी आर्य्यावर्तीयमनुष्यों की वेदोक्त धर्माढ्यता प्राचीन अभ्युदयोदय प्रच्छन्न क्यों रहजाता क्या प्रत्यक्ष में भी भ्रम है कि देखिये जो हम आर्यों को विना आसमानी किताब वाले वुत्परस्त नालायक इन के मत का कुछ भी ठिकाना नहीं आदि आक्षेपों से जैन मुशलमान और इसाई लाखह क्रोड़ह बहका के अपने मत में मिलाते और कहते थे कि आओ हम से बाद विबाद करो हमारा मजहब सच्चा और तुम्हारा झूंठा है वेही अब स्वामीजी के सामने वेदादि शास्त्रों और तदुक्त आर्य्यधर्म का खंडन तो दूर रहा परंतु वाद करना भी असह्य समझते और कहते हैं कि आप हम पर प्रश्न मत कीजिये डरते हैं स्वामीजी के सन्मुख तो ऐसा है परंतु जिन्हों ने स्वामीजी के ग्रन्थ देखे और उन का समागम यथावत् किया है उन के भी सामने वे विजयवंत नहीं होसकते इत्यादि जो राजाजी आदि स्वामीजी के स्तुत्य गुण कर्म स्वभाव जानते तो उन के साथ ऐसा विरुद्ध वर्त्तमान कभी न करते सर्व शक्तिमान् सर्वान्तर्यामी सर्वव्यापक सर्वनियन्ता जगदीश्वर सब आर्य्यों के आत्माओं में परस्पर प्रीति गुण स्वीकार दोष परिहार वेद विद्योन्नति रूप कल्पवृक्ष और चिन्ता मणि को सुस्थिर करे जिस

से सब आर्य्य भाई उस को परस्पर प्रेम और उपकार रूप सुन्दर जल से सींच कर उस के आश्रय से प्राचीन आर्य्य पदवी को पाकर आनन्द में सदा रहैं और सब को रक्खें ॥

राजाजी का बनाया इतिहास मैं ने देखा तो अद्भुत बातें दिखाती हैं इन से यह भी प्रसिद्ध है कि जो स्वश्लाघा और अभिमान करेगा तो इतना ही करेगा निम्न लेख से यह बात सब को विदित होजायगी क्योंकि इङ्गित चेष्टित से मनुष्य का अभिप्राय गुप्त नहीं रह सकता राजाजी का कुछ अभी ऐसा वर्त्तमान है सो नहीं किन्तु (स्वभावो नान्यथा भवेत्) जैसा स्वभाव मनुष्य का होता है वह छूटना दुस्तर है जो उन्हों ने इतिहास तिमिरनाशक ग्रंथ बनाया है उस को कोई विद्वान् पक्षपात रहित सज्जन पुरुष ध्यान देकर देखे तो राजा जी की मानस परीक्षा और सौजन्य विदित अवश्य होजावे कि इन का क्या अभीष्ट है उस में अप्रमाण वेदादिशास्त्राभिप्रायशून्य बहुत बातें हैं और कुछ अच्छी भी हैं जो अच्छी हैं उन का स्वीकार और जो अन्यथा हैं उनके संक्षेप से दोष भी प्रकाशित करता हूं जैसा मुझ को विदित होता है इतिहास तिमिर नाशक पृष्ठ १ पङ्क्ति ११ (बाप दादा और पुरखा तो क्या हम इस ग्रन्थ में उस समय से लेकर जिस से आगे किसी को कुछ मालूम नहीं आज पर्य्यन्त अपने देश की अवस्था लिखने का मंसूबा रखते हैं) राजा जी थोड़ासा भी शोचते तो इतना अपना गौरव अपने हाथ से लिखने में अवश्य रुक्य जा कर रुक के यथार्थ बात को समझ सकते । क्या अपने पुरखों से स्वयं उत्तम और सब आर्य्यावर्त्त वासियों को इतिहास ज्ञान विषय में निकृष्ट अज्ञानी कर स्वश्लाघी स्वयं नहीं बने हैं क्या कोई भी पूर्ण विद्वान् स्वमुख से अपनी कीर्त्ति को कह सकता है । यह सच है कि जितना २ विद्याविनय मनुष्य को अधिक होता है उतना २ वह सुशील

निरभिमानी महाशय होता और जितना २ वह कम होता है उतनी २ उसको कुशीलता अभिमान और स्वल्पाशयता होती है। इति० पृष्ठ १—१६ (पुराना हाल जैसा इस देश का बेठौर ठिकाने देखने में आता है विरले किसी दूसरे देश का मिले गा) वाह वाह वाह !!! न जाने किस देश की पाठशाला में इतिहासों को पढ़ के राजा जी को अपूर्व विज्ञान हुआ क्या यूरोप अमरिका एफरीका आदि देशों के पूर्व इतिहासोंसे भी आर्य्यावर्त्त देश का प्राचीन इतिहास बुरा है यह भी इन का लेख आर्य्य लोगों को ध्यान में रखना चाहिये। इतिहा० पृष्ठ ३ पङ्क्ति २ (आगे संस्कृत श्लोक बनाते थे अब भाषा में छन्द और कवित्त बनाते हैं क्योंकि गद्य का कण्ठस्थ रखना सहज है निदान ये भाट इसी में बड़ाई समझते हैं) क्या ही शोक की बात है कि मनु वाल्मीकि व्यास प्रभृति ऋषि महर्षि महात्मा महाशय ब्राह्मण लोगों को तो राजा जी भाट ठहराते हैं और आप महात्माओं के निन्दक और उपहास कर्त्ता हो कर नकली की पदवी को धारण करते हैं विदित होता है कि आर्य्यावर्त्तीय धार्म्मिक आप्त पुरुषों की निन्दा और विदेशियों की अत्युक्ति सदृश स्तुति ही से राजा जी प्रसन्न बनते हैं। इतिहा० पृष्ठ ४ पं० ३० (हाय हमारे देश में इतना भी कोई समझने वाला नहीं) सिवाय आप के ऐसी २ गूढ़ बातों के मर्म को कौन समझ सकता है तब ही तो आप सब से बड़ा मंसूबा बांध कर इतिहास लिखने को प्रवृत्त हुए। इतिहा० पृष्ठ १० (बहुतेरे हिंदू यह भी कहें गे कि जो बात पोथी में लिखी गई और परंपरा से सब हिंदू मानते चले आये भला अब वह क्यों कर झूंठ ठहर सकती है) भला यहां तो हिंदुओं की परंपरा का तिरस्कार राजा जी कर चुके और दोनों निवेदनों में ब्राह्मण पुस्तकों को वेद मानने के लिये स्वीकार किया है ठीक है मतलब सिंधु ऐसी ही चतुराई से पूरा करना

होता है। इतिहा० पृष्ठ १२ पं० १ से लेकर पृष्ठ १४ पं० ११ तक बौद्ध जैन हिंदुओं के मत विषयक बातें लिखी हैं इस से विदित होता है कि राजा जी का मत बौद्ध जैनी ही है। इसी लिये अपने मत की प्रशंसा वैदिक मत की निन्दा मनमानी की है। यह इन को अच्छा समय मिला कि कोई जानें नहीं और वैदिक मत की जड़ उखाड़ने पर सदा इन की चेष्टा है पुनः स्वामी जी जो सनातन रीति से वेदों का निर्दोष सत्य अर्थ ठीक २ प्रकाशित कर रहे हैं इन को अच्छा कब लग सकता है इसी लिये निवेदनों में भी अपनी सदा की चाल पर राजा जी चलते हैं इस में क्या आश्चर्य है। इतिहा० पृष्ठ १५ पं० १ (हिंदुओं की प्राचीन अवस्था०) यह बड़ा अनर्थ राजा जी का है कि आर्यों को हिंदू और पारस देश से आये हैं। पहिली बात तो इनकी निर्मूल है क्योंकि वेदों से लेके महाभारत तक किसी ग्रन्थ में आर्यों को हिंदू नहीं लिखा कौन जाने राजा जी के पुरखे पारस देश से ही इस देश में आये हों और उन की परंपरा से स्वदेश पारस का संस्कार अबतक चला आया हो क्या यह बात असंभव है कि इस आर्य्यावर्त्त ही से कोई मनुष्य पारस देश में जा रहे हों क्योंकि पारस देश में उत्पन्न हुई मद्री पाण्डुराज से विवाहा थी उसी समय वा आगे पीछे वहां से यहां और यहां से वहां आ जा रहने का संभव हो सकता है और क्या जो पारस देश से आकर ही बसे होते तो पारसी लोगों वा ईरान वालों के प्राचीन इतिहासों में स्पष्ट न लिखते ? इतिहा० पृष्ठ० १५ पं० ५ (असुर को अहुर) नोट पं० १३ यहां भी ऋग्वेद के आरम्भ में असुर का अर्थ सुर लिया है और उसे सूरज का नाम माना है। असुरः प्राण दाता। असुरः सर्वेषां प्राणदः। असुर राक्षस के लिये तभी से ठहराया गया जब से सुर, देव, देवता के लिये ठहरा इत्यादि) धन्य ! है (मुखमस्तीति वक्तव्यं दश हस्ता हरीत की)

इस में तो कुछ दोष नहीं कि असुर को वे पारसी लोग अहुर कहैं परन्तु जो बातें ऋग्वेद के नाम से राजा जी ने लिखी हैं सब निर्मूल हैं क्योंकि ऋग्वेद के आरम्भ में तो (असुरः प्राणदाता) (असुरः सर्वेषां प्राणदः) ये नहीं हैं किन्तु ऐसा पाठ ऋग्वेद भर में कहीं नहीं है। क्या आश्चर्य है कि ईरान वाले जिद्द से देव को राक्षस कहते हों। इतिहा० पृष्ठ १५ पं०७ (हिंदू अपने तईं दूसरी जाति के लोगों से जुदा रहने के निमित्त आर्य पुकारते थे और इन्हीं के बसने से यह देश हिमालय से विन्ध्य तक आर्य्यावर्त कहलाया पारस देशवाले भी आर्य्य थे वरन इसी कारण उस को अब भी ईरान कहते हैं) क्या अद्भुत लीला है ईरान वाले तो अब तक ईरानी, परस वाले पारसी ही बने रहे आर्य्य नाम वाले क्यों न हुए। कैसा झूंठ लिखा है कि अपने जुदा रहने के लिये आर्य्य पुकारते थे। जो ऋग्वेद की कथा भी राजा जी ने सुनी होती तो (विजानीह्यार्य्यान्येच दस्यवः) (उत शूद्रे उतार्य्ये) इन का अर्थ यही है (आर्य्य) श्रेष्ठ और (दस्यु) दुष्ट (आर्य्य) द्विज और (शूद्र) अनार्य को कहते हैं इस को जानते तो ऐसा अनर्थ क्यों लिख मारते जो ईरान से आर्य्य हो जाता है तो (आरा) और (अरि) आदि शब्दों से आर्य्य शब्द सिद्ध करने में किसी को राजा जी अटका सकें गे। ऐसे बहुत पुरुष अपनी प्रशंसा के लिये विदेशियों की झूंठी खुशामद किया ही करते हैं। इतिहा० पृष्ठ १५पं० २८ (ईरान की पुरानी पारसी भाषा मेएव प्रकार की संस्कृत थी अर्थात् उसी जड़ से निकली थी जिस से संस्कृत निकली है) भला पारसी पढ़े विना ऐसी २ गुप्त जड़ों की खोज राज जी न होते तो कौन करता जो थोड़ासा भी विचार करते तो श्रेष्ठ गुण से आर्य्य और एक किसी मनुष्य का नाम है आर्य्य उस से और इस देश वालों से क्या संबन्ध हो सकता है जिन ने दृष्टान्त संस्कृत पुराने

पारसी के उदाहरण दिये हैं ये सब संस्कृत से पुरानी पारसा बनी है यह ठीक है क्योंकि परस देश का नाम निशान भी न था तब से आर्य्य और आर्य्यावर्त्त देश है। जब पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ किया है तब यवन देश के सब राजा आये थे उसी ईरान का राजा शल्य भी महाभारत युद्ध में आया ही था इस लिये राजा जी का ऐसा अनुभव केवल पारसी भाषा पढ़ने से हुआ है संस्कृत से नहीं। इतिहा० पृष्ठ १६ पं० २ से (ये आर्य्य उस समय सूर्य के उपासक थे वेद में सूर्य्य की बड़ी महिमा गायी है हिंदुओं का मूल मंत्र गायत्री इसी सूर्य की बन्दना है विष्णु इसी सूर्य का नाम है) राजाजी का स्वभाव सब से विलक्षण है! कोई कहता हो दिन तो वे रात कहें यद्यपि वेदों में सूर्य्य शब्द से परमेश्वर आदि कई अर्थ प्रकरण से भिन्न २ कहे हैं परंतु उपासना में सूर्य्य शब्द से जिस को गायत्री मंत्र कहता और जो व्यापकता से विष्णु है वहां परमेश्वर ही लिया है अन्यत्र भौतिक। इतिहा० पृष्ठ १८ पं० १ (आकाश को इन्द्र ठहराया) वेदों में इन्द्र शब्द से आकाश का ग्रहण कहीं नहीं किया है। हां राजाजी ने अपनी कल्पना से समझा होगा इतिहा० पृष्ठ १८ पं० ३ (गाय, बैल, घोड़ा, भेड़, और बकरी इत्यादि का बलि देते थे और उन का मांस भून भून और उबाल २ कर खाते थे—नोट ऋग्वेद में एक अश्वमेध का हाल यों लिखा है घोड़े के आगे रङ्ग बिरङ्ग की बकरियां रख कर उस से अग्नि की परिक्रमा दिलाई और फिर खड्ग से बांध कर और फरसे से काट कर उस का गोश्त सींक पर भूना और उबाला और गोले बना कर खागये) हाय ऐसे अनर्थ लेख से वेद और आर्य्यों की निन्दा कर राजाजी ने संतुष्टि क्योंकी क्योंकि गाय आदि पशुओं का मारना वेदों में कहीं नहीं लिखा न शराब का पीना और अश्वमेध का ऐसा हाल कहीं भी नहीं लिखा

पूज्य जिनआनन्द ... पुस्तकालय

राजाजी ने वाम मार्गियों के सङ्ग से ऐसी बात कि जिस से वेदों की निन्दा हांसी हो लखी होगी। इतिहा० पृष्ठ १६ पं० १२ (वर्ण भेद शूरू में दोही रहा होगा अर्थात् गोरा और काला वर्ण का अर्थ रङ्ग है) वाह क्या चतुराई की लटा झलक रही है क्या गोरे और काले के बीच में कोई भी रङ्ग नहीं होता और (वर्णं वाहुः पूर्वसूत्रे) वर्ण नाम अक्षर वर्ण नाम स्वीकार अर्थ क्या नहीं होते (स्वार्थी दोषन्नपश्यति) हां यह हो तो हो कि बिना गोरों की प्रशंसा के स्वार्थ सिद्ध क्योंकर होता) इतिहा० पृष्ठ २० से लेके अंगरेज के पैर पकरने अर्थात् ग्रन्थ की समाप्ति पर्य्यन्त राजाजी ऐसी चाल चलन से चले हैं कि जिस से इस देश की बहुत बुराई और कुछ अन्य देशों की भी वेदादि शास्त्रों की निन्दा और जैनमत की इङ्गित से प्रशंसा और अंगरेजों की प्रशंसा में जानो सब भाटों के प्रपितामहही बन रहे हैं। क्याही शोक की बात है कि इतिहास तिमिरनाशक के तीसरे खण्ड में कितनी बडी वेद आदि शास्त्रों और आर्य्य तथा आर्य्यावर्त्त देश की निन्दा लिख कर छपवाई है तो भी राजा जी के चरित्र पर किसी आर्य्य विद्वान् ने विचार कर प्रत्युत्तर नहीं किया मैं ने अल्प सामर्थ्य से (स्थाली पुलाक न्याय) के समान थोड़ासा नमूना राजाजी का दिखलाया है। इतने ही से सब बुद्धिमान् राजा जी के और मेरे गुण दोषों का विचार यथावत् कर ही लेंगे। जिन्हों ने वेद और आर्य्यावर्त्त की गर्हा करनी ही अपनी बड़ाई समझ ली है तो स्वामी जी की निन्दा करें इस में क्या आश्चर्य है सर्व शक्तिमान् परमात्मा परमदयालु सब पर कृपा रक्खे कि कोई किसी की निन्दा न करे सत्य को मानें और झूंठ को छोड़दे मेरा यहां यह अभिप्राय नहीं है कि किसी को व्यर्थ निन्दा करूं वा मिथ्या स्तुति हां इतना कहता हूं कि जितनी जिस की समझ है उतना ही कहै और लिख